International Journal of Advanced Educational Research
ISSN: 2455-6157
Impact Factor: RJIF 5.12
www.educationjournal.org
Volume 3; Issue 4; July 2018; Page No. 17-25

बघेलखण्ड में बघेलों का अभ्यूदय एवं विकास का समीक्षात्मक अध्ययन

डॉ० नृपेन्द्र सिंह परिहार
प्राचार्य, डी० आर० एस० बी०एड० कालेज, गंगापुर, जिला रीवां, मध्य प्रदेश, भारत।

सारांश
इस शोध पत्र में ''रीवा स्टेट गजेटियर'' को मूल आधार स्रोत मानते हुए बघेल वंश के अभ्युदय एवं विकास का विश्लेषण कर रहे हैं। कर्णदेव बघेल दक्षिण में देवगिरि भाग गया था। ऐसी ही भगदड़ में इस बघेल राजवंश के दो भ्राता वहाँ से पलायन कर विन्ध्य श्रृंखला से गुजरते हुए मध्य पूर्व विन्ध्य में आश्रय लिया हो तो कोई अत्युक्ति नहीं है। अपनी इस दयनीय स्थिति में इन बघेलों ने भर शासकों की सेवा ग्रहण कर ली थी और शक्ति संचय करने पर गहोरा के अधिपति बन गये थे।
लोधियों की सम्पूर्ण सेना तिवारियों के आधिपत्य में थी। एक दिन जब लोधियों के यहाँ कोई महोत्सव हो रहा था और वे सब मदिरा पीकर उन्मत्त थे, उसी समय उनकी ही सेना लेकर इन्होंने चढ़ाई कर दी और विजय प्राप्त की। इसके पश्चात् महाराज व्याघ्रदेव ने तिवारियों को आधा राज्य देना चाहा, जिसे इन लोगों ने स्वीकार नहीं किया। तब महाराज ने तिवारियों को ''अधरजिया तिवारी'' की पदवी प्रदान की। उसी दिन से रीवा राज्य के तिवारी ''अधरजिया'' कहलाने लगे।
महाराज विक्रमादित्य ने राज–प्रसाद और अन्य दूसरे भवन इस प्रकार बनवाये कि साधारण संरक्षित ग्राम से परिवर्तित होकर यह नगर एक बड़े राज्य की राजधानी बनने के योग्य निर्मित हो गया। महाराज विक्रमादित्य के आने से पूर्व सन् 1554 में यहाँ एक बस्ती का निर्माण शेरशाह सूरी के पुत्र जलाल खाँ (सलीमशाह) के द्वारा कराया गया था। अपने पिता की मृत्यु का समाचार पाकर जलाल खाँ यहीं से कालिंजर गया था और उसके पश्चात् सलीमशाह के नाम से दिल्ली के सिंघासन पर बैठा था। जलाल खाँ ने यहाँ पड़ाव के दौरान बीहर–बिछिया के संगम स्थल के किनारे किले की नींव डाली थी।

मूल शब्द : बघेलखण्ड, अभ्यूदय, विकास, समीक्षात्मक अध्ययन, मरफा, अधरजिया।

प्रस्तावना

बघेलखण्ड में बघेलों की सत्ता की स्थापना का श्रेय गुजरात के सोलंकी राजवंश के वीर धवल के पुत्र 'बाघराव' को है, जिन्हें व्याघ्रदेव कहा जाता है। कुछ इतिहासकार व्याघ्रदेव को बघेलखण्ड में बघेलों का मूल पुरुष स्वीकार नहीं करते हैं। किन्तु ''वीरभानूदय काव्यम'' में व्याघ्रपाद मुनि को बघेलों का मूल पुरुष निरूपित किया गया है। रीवा स्टेट गजेटियर (1907, पृष्ठ 12), आर्किलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट (क्रं. XXI, पृष्ठ 104) रीवा राज्य दर्पण (जीतन सिंह), रीवा राज्य का इतिहास (रघुवर प्रसाद), व्याघ्र वंशावली (उर्दू), रीवा राज्य का इतिहास (गुरु राम प्यारे अग्निहोत्री) आदि ग्रन्थों में बघेलों का आदि पुरुष व्याघ्रदेव को माना गया है। हीरानन्द शास्त्री ने वीरभानूदय में अप्राप्त व्याघ्रदेव, कर्णदेव, सोहागदेव, सारंगदेव, वीसलदेव, दलकेश्वर, मलकेश्वर और वारियादेव–जैसे आठ नामों को कल्पित कहा है। वीरभानूदय काव्य में बघेलों को भारद्वाज–व्याघ्रपाद गोत्रीय एवं व्याघ्रपाद मुनि का वंशज बतलाया गया है। डॉ0 राधेशरण ने अपनी पुस्तक, 'विन्ध्य–क्षेत्र का इतिहास' में लिखा है कि, व्याघ्रपाद एक गोत्र प्रवर्तक मुनि रूप में कल्पित हैं। कवि ने संभवतः अनुश्रुतियों के आधार पर वंश के अनेक पूर्वजों का नाम जोड़ दिया है, जो ऐतिहासिक नहीं प्रतीत होते। अधिकांश बघेल वंशावलियों में अंकित व्याघ्रदेव के अतिरिक्त कर्णदेव, सोहागदेव, सारंगदेव, वीसलदेव, दलकेश्वरदेव, मलकेश्वरदेव तथा वरियारदेव को इतिहासकार काल्पनिक समझते हैं। ये नाम वीरभानूदय काव्य में भी नहीं है। वीरभानूदय काव्य में बघेल राजकुल की शरुवात भीम (भीमलदेव) से होती है। ''बघेलवंशवर्णनम्'' में इसके पहले शासक का नाम कर्णदेव दिया गया है, जिसे गुजरात में उत्पन्न बतलाया गया है। संभवतः यह कर्णदेव गुजरात का कर्णदेव बघेल (कर्णबघेला) था, जो गुजरात में उत्पन्न हुआ था और सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी का समकालिक था। इसी कर्णदेव बघेल के समय में (1299 ई.) खिलजी सेनाओं ने गुजरात पर आक्रमण किया था। इस मुस्लिम आक्रमण में गुजरात को लूटा एवं ध्वंस किया गया था।

1, व्याघ्रदेव बघेलखण्ड में ''बघेल राज्य'' स्थापित होने के पूर्व गुजरात में बघेलों की सार्वभौम्य सत्ता स्थापित हो चुकी थी, जिनकी राजधानी ''अन्हिलवाड़ा'' थी। बघेल क्षत्रिय चालुक्यों की एक शाखा है, जिन्होंने दक्षिण भारत के चालुक्य क्षत्रियों की एक शाखा के रूप में गुजरात पहुँचकर 960ई. में अन्हिलवाड़ा में सोलंकियों का राज्य स्थापित किया था। रीवा स्टेट गजेटियर में भी यह उल्लेख किया गया है कि, बघेलखण्ड की रीवा रियासत के नरेश सोलंकी अर्थात् चालुक्य क्षत्रिय की बाघेल शाखा के राजपूत हैं। बघेलों का इस क्षेत्र में आने के पूर्व इनके पूर्वज चालुक्यों और सोलंकियों का दक्षिणी भारत और गुजरात के इतिहास में अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका रही है। दक्षिण भारत में चालुक्यों का इतिहास छठीं शताब्दी से प्राप्त होता है। दक्षिण भारत के इन्हीं चालुक्य सम्राटों के वंशज गुजरात आये। गुजरात में ''अन्हिलवाड़ा'' के शासक के रूप में महाराज ''मूलराज'' ने सन् 960 में चालुक्य क्षत्रियों की सोलंकी शाखा की नींव डाली। इस वंश के प्रतापी नरेश ''जयसिंह सिद्धराज'' हुए, जिनके कोई सन्तान नहीं थी। इन्होंने अपने नजदीकी सम्बन्धी त्रिभुवनपाल के पुत्र कुमारपाल को अपना उत्तराधिकारी बनाया। कुमारपाल (1143–1173 ई.) ने अपनी मौसी के पुत्र अर्णोराज को ''व्याघ्रपल्ली'' (बघेला गाँव) का सामन्त बना दिया। अर्णोराज के पुत्र लवण प्रसाद को गुजरात के लेखों में

''व्याघ्रपल्लीय'' कहा गया है, जो कालान्तर में अप्रभंश के रूप में ''बघेल'' हो गया। इस तरह व्याघ्रपल्ली गाँव में रहने के कारण अर्णोराज के उत्तराधिकारी ''बघेल'' कहलाये जाने लगे किन्तु रीवा स्टेट गजेटियर, जीतन सिंह द्वारा लिखित रीवा राज्य दर्पण एवं गुरु राम प्यारे अग्निहोत्री ने रीवा राज्य के इतिहास में लिखा है कि, गुजरात के पाँचवें सोलंकी राजा भीमदेव के चौथे पुत्र सारंगदेव के पुत्र वीर धवल के सुपुत्र का नाम ''बाघराव'' था। गुजरात के शासक सिद्धराज जय सिंह (1093–1142ई.) ने 'बाघराव' को जागीर में व्याघ्रपल्ली (अन्हिलवाड़ा से 10 मील दक्षिण पश्चिम) (''बघेला गाँव) दिया था, जिसके आधार पर बाघराव की संतानें ''बघेल'' नाम से विख्यात हुई। बाघराव इससे संतुष्ट नहीं थे, उन्होंने यह जागीर सिद्धराज जयसिंह के पुत्रों को देकर गुजरात से प्रस्थान किया। गुजरात के इस सोलंकी वंश का विवरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

गुजरात का सोलंकी वंश वृक्ष

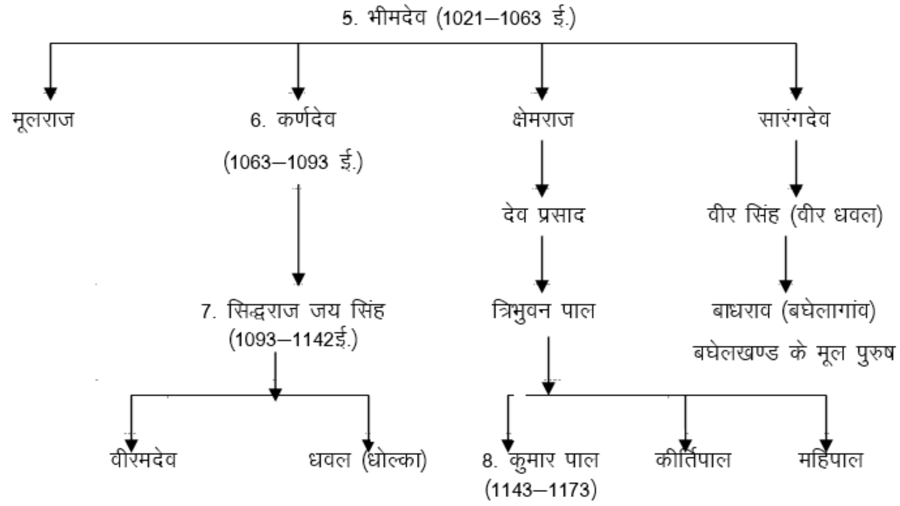

बाघराव को ''बाघदेव'' भी कहा जाता था, गुजराती में देव का अर्थ ठाकुर होता है। यही बाघदेव दक्षिण सोलंकी सम्वत् 631 यानी सन् 1233–34 में गुजरात से चलकर अनेक तीर्थों का भ्रमण तथा सामाजिक परिस्थितियों का अध्ययन करते हुए चित्रकूट पहुँचे। चित्रकूट में पहुँचकर उन्होंने आसपास के क्षेत्र को देखा। उस समय वहाँ पर कोई सुदृढ़ सत्ता नहीं थी। तरौंहा में चन्द्रावत परिहारों का राज्य था, जिसके राजा मुकुन्ददेव थे। कालिंजर भटों के राज्य के अन्तर्गत था। 'बाघदेव', जिन्हें 'व्याघ्रदेव' के नाम से सम्बोधित किया जाता है, ने कालिन्जर से 16 मील उत्तर पूर्व की ओर पहाड़ी पर चन्देलों के रिक्त दुर्ग ''मरफा'' पर (जो कि समुद्र तल 1240 फुट ऊँचा था) अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया और उन्होंने अपने रक्षार्थ अपने साथ आये हुए लोगों की जो बस्ती बसाई उसका नाम ''बघेलवारी'' पड़ गया।[1] बांदा गजेटियर के अनुसार व्याघ्रदेव का प्रभुत्व इस किले के उत्तर में 15 मील (24 किमी.) ''बघेल भवन'' और दक्षिण में 15 मील (24 किमी) ''बघेलन नाला'' तक था। उस समय दिल्ली के सिंहासन पर कोई सुदृढ़ शासक नहीं था और आस पड़ोस के शासकों ने व्याघ्रदेव से किसी प्रकार छेड़–छाड़ नहीं की। परिणाम यह हुआ कि उन्होंने भटदेश के राजा से कालिंजर छीन लिया और साथ ही पड़ोसी मण्डीहा राजा को जीतकर उसका राज्य ले लिया। मण्डीहा रघुवंशी राजा था। गहोरा में लोधियों के राज्य में भी व्याघ्रदेव ने अधिकार कर लिया।

इनका पार्श्ववर्ती राज्य तरौंहा का था, जिसके शासक मुकुन्ददेव चन्द्रावत परिहार थे। उन्होंने अपनी इकलौती बेटी ''सिन्दूरमती'' का ब्याह व्याघ्रदेव के साथ कर दिया। इनके दूसरी कोई सन्तान भी न थी, अस्तु अपना राज्य भी इन्हीं को सौंप दिया। व्याघ्रदेव ने इसके पश्चात् परदवाँ और तरिहार प्रान्त भी जीत लिया। इस तरह 13वीं शताब्दी में इस क्षेत्र पर ''बघेल'' राजपूतों का आधिपत्य हुआ। व्याघ्रदेव का एक विस्तृत भू–भाग में अधिकार हो गया। इन्होंने अपनी राजधानी गहोरा में स्थापित की। गहोरा रीवा पठार के तलहारी क्षेत्र में स्थित था। वर्तमान समय में गहोरा बाँदा–चित्रकूट जिला, उत्तरप्रदेश में स्थित है। कर्बी से 14 मील पूर्व रयपुरा गाँव के निकट उसके दक्षिण में बह रही दो नदियों के मध्य ''गहोरा खास'' नामक गाँव बसा है। अभयराज सिंह परिहार ने ''गहोरा का ऐतिहासिक अनुसन्धान'' (पृष्ठ 17) में लिखा है कि, गहोरा का असली नगर नदी के दूसरे किनारे से प्रारंभ होता है, यहाँ महल, मन्दिर, कुएँ तथा नागरिकों की बस्ती के चिन्ह अभी भी पाये जाते हैं। यह हिस्सा अब ''खेरवा'' नाम से विख्यात है। उस समय इनके शासित प्रान्त की आमदनी अठारह लाख रुपये थी। गहोरा के दो हिस्से थे। एक तो ''गहोराखास'' और दूसरा ''गहोराघाटी'' था। व्याघ्रदेव की परिहारिन ठकुराइन से दो पुत्र हुए जिनमें जेठ कर्णदेव गहोरा के अधिकारी हुए और लहुरे पुत्र कन्धरदेव कसौटा और परदमा के ठाकुर हुए। व्याघ्रदेव (बाघराव) इस प्रदेश के बघेलों के आदि पुरुष हैं।[2] जिन्होंने बघेलों की सत्ता इस प्रदेश में स्थापित की। इनका स्वर्गवास वि.सं. 1245 के आसपास हुआ।

2, करणदेव – करणदेव की राजधानी 'गहोरा' में थी। इनका विवाह सोमदत्त करचुलि की सुपुत्री पद्मकुँवरि के साथ हुआ था। सोमदत्त ने करणदेव को 'बान्धवगढ़' का किला दहेज में दिया था। करणदेव ने बान्धवगढ़ में एक विशाल दरवाजा बनवाया था। आज भी यह 'करणपाल दरवाजा' के नाम से प्रसिद्ध है। करणदेव ने अपने राज्य का विस्तार गहोरा से बान्धवगढ़ क्षेत्र तक किया था। उन्होंने भरगढ़ (वर्तमान बरगढ़), भारभुक्त (भरहुत), भैंसवार आदि ठिकानों पर प्रभुत्व स्थापित करते हुए कैमोर पठार पर भी अधिकार जमा लिया था।

3, सोहागदेव – सोहागदेव ने अपने राज्य का विस्तार बांधवगढ़ के दक्षिण दूर क्षेत्र तक बढ़ा लिया था तथा छोटी–मोटी सत्ताओं को अपने अधीन कर लिया था। सोहागदेव ने सोहागपुर (वर्तमान

शहडोल) नगर को बसाया था। सोहागपुर में अनेक जलाशयों का निर्माण भी महाराज सोहागदेव द्वारा कराया गया था। उन्होंने विराट नगरी के खण्डहरों का भी जीर्णोद्धार कराया था।

4, सारंगदेव – सारंगदेव ने चन्देल राज्य के सामन्त ऊदल को बान्धवगढ़ में पराजित कर किले की एक कोठरी में बन्द कर दिया था, जिसे आज भी ''ऊदल की कोठरी'' कहा जाता है। चन्देल नरेश ने अपने सामन्त ऊदल के नेतृत्व में बान्धवगढ़ दुर्ग पर चढ़ाई की थी। इस युद्ध में जीतने के कारण सारंगदेव को संग्राम सिंह भी कहा जाता है।

5, विलासदेव – विलासदेव ने अपने राज्य का विस्तार दक्षिण क्षेत्र में विलासिया तक किया था। इसी स्थान को शहर के रूप में आबाद कर उन्होंने इसका नाम ''बिलासपुर'' (वर्तमान समय में छत्तीसगढ़ राज्य का एक प्रमुख नगर) रखा था। इस तरह इनके शासन काल में राज्य का विस्तार गहौरा से बिलासपुर तक हो गया था।

6, भीमलदेव – विलासदेव के पुत्र भीमल देव संस्कृत विषय के प्रकाण्ड विद्वान थे। उन्होंने ''वीरभानूदय'' काव्य की रचना की थी।

7, अनिकदेव – अनिकदेव जिनको रनिकदेव भी कहा जाता था, भगवान कृष्ण के परम् उपासक थे। इन्होंने अपने शासनकाल में अनेक आश्रमों का निर्माण कराया था।

8, वलनदेव – तवारीख फिरिस्ता, मिन्हाजुस्सिराज और ऑर्केलाजिकल सर्वे रिपोर्ट खण्ड 21 के अनुसार अनिकदेव के पुत्र वलनदेव के समय दिल्ली के सिंघासन पर गुलाम वंश के बादशाहों का शासन था। वलनदेव संस्कृत साहित्य के विद्वान एवं भक्त पुरुष थे। इनके दो पुत्र वलकेश्वरदेव तथा मलकेश्वरदेव हुए, जो एक–दूसरे के बाद राज्य के उत्तराधिकारी बने।

9, दलकेश्वरदेव – मुस्लिम इतिहासकारों के अनुसार कालिंजर का किला बघेल शासकों से छीन लिया गया था, किन्तु दूसरी बार इस पर आधिपत्य दलकेश्वरदेव के शासनकाल में स्थापित हुआ।

10, मलकेश्वरदेव – दलकेश्वरदेव के स्वर्गवास के पश्चात् उनके भाई मलकेश्वरदेव गद्दीनशीन हुए। इनका सेंगरों से युद्ध हुआ, जिसमें सेंगर पराजित हुए। सेंगरों के सरहदी स्थान पर 'मालकपुर' शहर स्थित था, जिसे आजकल ''मनगवाँ'' कहते हैं।

11, वरियारदेव – वरियारदेव को वीरराजदेव के नाम से सम्बोधित किया जाता था। इनके शासनकाल में राज्य कार्य का संचालन गहौरा से होता था।

12, बल्लारदेव – बल्लारदेव फिरोजशाह तुगलक के समकालीन थे। यह पहले बघेल नरेश थे, जिन्होंने ''महाराजाधिराज'' की पदवी धारण की थी। इनका विवाह चन्देल राजा जसराजदेव की कन्या राजला देवी से हुआ था। महारानी राजला देवी ने गहौरा में एक तालाब खुदवाया था और उसकी मेड़ पर शीतला माता के मन्दिर का निर्माण कराया था। इनके शासन काल में राजधानी गहौरा में थी।

13, सिंह देव – कथा सरित्सागर बघेलवंश में एक शिलालेख का वर्णन किया गया है, जिसके अनुसार सिंह देव का युद्ध चन्देलों से रघुराजनगर के दक्षिणी भाग पर हुआ था। इस युद्ध में यह विजयी हुए थे। कुछ इतिहासकार सिंह देव को यहाँ का शासक होना नहीं मानते हैं, उनकी मान्यता है कि बल्लार देव के पश्चात् उनके नाती भैरव देव राजगद्दी पर बैठे थे। वीरभानूदय काव्यम के श्लोक 31–36 में लिखा गया है, कि बल्लारदेव के पुत्र सिंह देव ने त्रिवेणी (प्रयाग) में जल समाधि लेकर अपने जीवन का अन्त कर दिया था। ऐसी स्थिति में बल्लारदेव ने अपने पौत्र वीरमदेव को अपना उत्तराधिकारी बनाया था।

14, भैरम देव (वीरमदेव) – अपने शासन काल (1360–1425ई.) में इन्होंने हुण्डा राज्य पर विजय प्राप्त की थी। इसके अलावा इन्होंने नरोगढ़ के किले पर भी विजय प्राप्त की थी। वीरमदेव बघेल वंश के अत्यन्त पराक्रमी नरेश थे। इनके पड़ोसी राज्यों में कालपी के मलिकजादा, नागौद के परिहार, मालवा के खिलजी, जौनपुर के शर्की व दिल्ली के लोदी प्रमुख थे। कालपी के मलिकजादाओं से वीरमदेव का हमेशा तनाव बना रहता था।

15, नरहरिदेव – भैरम देव की मृत्यु के बाद नरहरिदेव गद्दी पर बैठे। इनके शासन काल में प्रजा सुखी थी। इन्होंने राज्य का विस्तार किया। नरहरिदेव मालवा के महमूद शाह खिलजी के समकालीन थे। सिहाब हाकीम ने अपनी पुस्तक ''मासिर–ए–महमूदशाही'' में लिखा है कि, नरहरिदेव ने अपने पिता वीरमदेव का अनुसरण करते हुए महमूद शर्की से मित्रता के सम्बन्ध कायम रखे थे और उसके कालपी सैन्य अभियान में सहयोग किया था।

रीवा स्टेट गजेटियर में दिये गये तथ्यों के अनुसार प्रथम बघेल शासक व्याघ्रदेव से लेकर नरहरिदेव तक का शासनकाल 1234 से 1470 के बीच का रहा है।

16, भीरदेव (भैदचन्द्र) (1470–1495) – इस क्षेत्र में बघेल शासकों के संबंध में ऐतिहासिक लेख भीरदेव (भैदचन्द्र) के शासन काल से प्राप्त होते हैं। जिस समय भीर देव इस क्षेत्र के शासक थे, उस समय दिल्ली सम्राट बहलोल खाँ लोदी था। मुस्लिम इतिहासकारों ने भीरदेव 'राजा भीट' या 'पन्ना नरेश' भी लिखा है। इसका कारण यह था कि, उस समय बुन्देलखंड का अधिकांश भाग गहौरा राज्य में शामिल था। भैदचन्द्र ने अपनी शक्ति के बल पर अपनी सत्ता का विस्तार उत्तर में अरैल (इलाहाबाद) और कन्तित (मिर्जापुर) तक, पश्चिम में गहोरा और कालिन्जर तक तथा दक्षिण में सरगुजा और बान्धवगढ़ तक कर लिया था। इनका विवाह वगीसर (बक्सर) में हुआ था।

17, शालिवाहन देव (सन् 1495–1500) – सिकन्दर लोदी के जौनपुर की तरफ वापसी का समाचार महाराज भीरदेव (भैदचन्द्र) के पुत्र लक्ष्मीचन्द ने जाकर नवाब हुसैनशाह शर्की को दिया। हुसैनशाह शर्की ने स्थिति का लाभ उठाते हुए सिकन्दर लोदी पर आक्रमण करने का निर्णय लिया। इस युद्ध में हुसैनशाह सिकन्दर लोदी से पराजित हुए। इसी बीच सिकन्दर लोदी ने बघेल नरेश शालिवाहन के पास एक समझौते की पेशकश की, जिसकी शर्ते महाराज को स्वीकार्य नहीं थी। सिकन्दर लोदी को जब यह जानकारी हुई थी तथा यह भी पता चला कि उसके वापस लौटने का समाचार हुसैनशाह को बान्धवनरेश द्वारा दिया गया था, तो उसने बदला लेने के लिए सन् 1499 में तीसरी बार बांधवगढ़ पर चढ़ाई कर दी।[3] उसके योद्धाओं ने बान्धवगढ़ को तोड़ने के लिए बहुत ही बड़ा साहस प्रकट किया था, किन्तु उस दुर्गम गढ़ को

तोड़ने में वे असफल रहे। वह कई वर्ष तक इस दुर्ग को घेरे पड़ा रहा। उस समय राजा शालिवाहन (1495–1500) यहाँ के शासक थे। कहा जाता है कि जब किले में रसद खत्म हो गई तो महाराज ने किले को छोड़ देने का विचार किया।

18, वीरसिंह देव (सन् 1500–1540) – वीरसिंह देव बघेल वंश के महान प्रतापी शासक हुए हैं। जिस समय इनका राज्याभिषेक हुआ, उस समय इस क्षेत्र की राजधानी गहौरा में थी। बान्धवगढ़ इनके दक्षिण क्षेत्र की राजधानी थी। वीरसिंह देव का जन्म 1467 ई. में हुआ था। इनकी माता का नाम महारानी कल्याणदेवी था। जिस समय यह गद्दी पर बैठे उस समय इनकी उम्र लगभग 33 वर्ष की थी। प्राप्त अभिलेखों के अनुसार महाराज वीरसिंह देव के शासन काल में बिरसिंहपुर नामक ग्राम को बसाया गया था। वर्तमान समय में यह कस्बा सतना जिले में है। महाराज वीरसिंह ने अपने शासन काल में रतनपुर, गढ़ा–मण्डला, भरो, छोटा नागपुर तथा नर्मदा नदी के उत्तरी भाग पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया था। इन्होंने एक विशाल सेना का गठन किया था, जिसमें प्रशिक्षित हस्तिदल व घुड़सवार थे। इनकी घुड़सवार सेना (रिसाला) इतनी रणकुशल थी कि उसके बल पर महाराज वीरसिंह देव ने कई बड़े युद्धों को आसानी से जीता था। महाराज वीरसिंह का विवाह उत्कल नरेश की कन्या कुलपालिका देवी से हुआ था। महाराज वीरसिंह का स्वर्गवास सन् 1540 में हुआ।

19, वीरभानु (सन् 1540–1555) – महाराज वीरभानु का जन्म सन् 1486 में हुआ था। वीरभानु के समय राज्य की सीमा उत्तर में गहौरा और प्रयाग तक, दक्षिण में अमरकंटक, पश्चिम में पन्ना तथा पूर्व में मिर्जापुर तक थी। महाराज वीरभानु का विवाह हैहय वंश की कन्या गोसाइनी से हुआ था। महाराज वीरभानु तर्कशास्त्र, वेदान्त, पुराण और दण्डनीति के उच्चकोटि के विद्वान थे। इनका राज्याभिषेक गहौरा में हुआ था। राज्य की उपराजधानी बान्धवगढ़ में थी। राज्य संचालन के लिए इन्होंने एक मन्त्रिपरिषद् का गठन किया था, जो महत्वपूर्ण मसलों पर महाराज को परामर्श देती थी।

20, रामचन्द्र (सन् 1555–1592) – महाराज वीरभानु के पश्चात् उनके पुत्र युवराज रामचन्द्र बान्धव गद्दी पर बैठे। युवराज रामचन्द्र का जन्म सन् 1520 में हुआ था। रामचन्द्र का जन्मोत्सव बड़ी धूमधाम से मनाया गया था। इनकी शिक्षा–दीक्षा तत्कालीन मन्त्री गणेश राउत के निर्देशन में हुई थी। उन्हें धनुर्विद्या का प्रशिक्षण भी इन्हीं से प्राप्त हुआ था। इन्होंने संगीत की भी साधना की थी। रामचन्द्र का विवाह गौर देश के नरेश कीर्तिसिंह की पौत्री तथा माधव सिंह की पुत्री यशोदा के साथ हुआ था। विवाह के पश्चात् ही महाराज वीरभानु ने सन् 1552 में रामचन्द्र को युवराज पद पर आसीन कर दिया था। गद्दी पर बैठते ही महाराज रामचन्द्र को इब्राहिम शाह सूर के आक्रमण का सामना करना पड़ा। इस युद्ध में महाराज रामचन्द्र विजयी हुए और इब्राहिम शाह सूर को कैद कर लिया गया। किन्तु महाराज रामचन्द्र ने उनको अपने दरबार में आदर सहित सम्मान देते हुए रखा और उनकी इच्छानुसार उन्हें ससम्मान विदा कर दिया। महाराज रामचन्द्र सम्राट अकबर के समकालीन थे। महाराज रामचन्द्र ने कालिन्जर का दुर्ग शेरशाह सूरी के दामाद अली खाँ से, जो वहाँ का किलेदार था, बहुत बड़ी राशि देकर खरीद लिया था। सन् 1564 में 'कड़ा' का गवर्नर गाजी खाँ तन्नौरी महाराज रामचन्द्र की शरण में आया।

सन् 1564–65 में सम्राट अकबर ने अपने खास सरदार जलाल खाँ कुर्ची को बान्धव नरेश रामचन्द्र के पास भेजकर सुप्रसिद्ध गायक तानसेन की माँग की। महाराज रामचन्द्र की इच्छा न होते हुए भी बीरबल के समझाने पर तानसेन को सम्राट अकबर के दरबार में भेजा गया। कहा यह जाता है कि बीरबल इसी धरती की देन हैं, उनका जन्म ''गोधरा'' (जिला सीधी) में हुआ था। लोकमान्यता है कि बीरबल को गोधरा की देवी का वरदान प्राप्त था। विन्ध्यांचल की पवित्र धरती के यह दो रत्न – तानसेन तथा बीरबल सम्राट अकबर के नौ रत्नों में प्रमुख थे। सन् 1592 में महाराज रामचन्द्र के स्वर्गवास के पश्चात् युवराज वीरभद्र बान्धवगढ़ के शासक हुए।

21, वीरभद्र (सन् 1592–1593) – वीरभद्र का जन्म सन् 1554 में गहौरा में हुआ था। इनकी माताश्री का नाम यशोदा था। पितामह वीरभानु ने अपने पौत्र के जन्म पर वृहद स्तर पर जन्मोत्सव मनाया था। महाराज रामचन्द्र के शासन काल में युवराज वीरभद्र प्रायः सम्राट अकबर से मिलने जाया करते थे। जिस समय महाराज रामचन्द्र की मृत्यु हुई उस समय भी वह दिल्ली में ही थे। अपने पिता के निधन का समाचार सुनकर वे बान्धवगढ़ की ओर चले। दुर्भाग्यवश रास्ते में उनकी पालकी टूट जाने के कारण उन्हें गंभीर चोट लगी। किसी प्रकार बान्धवगढ़ पहुँच कर उन्होंने शासन कार्य प्रारंभ किया, किन्तु उनकी यह चोट घातक सिद्ध हुई। एक वर्ष के शासन काल के भीतर ही सन् 1593 में उनका स्वर्गवास हो गया। महाराज वीरभद्र के दो पुत्र विक्रमादित्य और दुर्योधन सिंह थे।

22, विक्रमादित्य (सन् 1593–1624) – महाराज वीरभद्र के दोनों पुत्र – विक्रमादित्य और दुर्योधन सिंह उनके स्वर्गवास के समय अल्पवयस्क थे। इस समय इनके परबाबा स्व0 वीरभानु के भाई यमुनी भान (सोहागपुर इलाका) जीवित थे। सन् 1597 में सम्राट अकबर ने अपने विश्वासपात्र नायक इस्मायल कुली खाँ को बान्धवगढ़ भेजकर महाराज विक्रमादित्य को दिल्ली बुला लिया। सन् 1597 से 1602 तक बान्धवगढ़ और उसके आसपास का क्षेत्र मुस्लिम हाकिमों के अधीन रहा। इलियट ने अपनी कृति ''भारत का इतिहास'' (खण्ड 7 पृष्ठ 47) में लिखा है कि बान्धवगढ़ को सम्राट अकबर ने थोड़े ही वर्षों के पश्चात् महाराज विक्रमादित्य को वापस कर दिया था। सन् 1617 में महाराज विक्रमादित्य बान्धवगढ़ लौटे, किन्तु उनका मन बान्धवगढ़ में नहीं लगा और वे शिकार के लिए राज्य के उत्तरी भाग की ओर चल पड़े। शिकार खेलते–खेलते वर्तमान रीवा की प्राचीन बस्ती रनबहादुर गंज (बिछिया) में पहुँचकर उन्होंने अपने शिकारी कुत्तों को एक खरगोश का पीछा करते पाया। कुछ देर तक दौड़ते–दौड़ते खरगोश एक ऐसे स्थान पर पहुँच गया, जहाँ कुत्तों के मुकाबले में वह खड़ा हो गया। महाराज विक्रमादित्य ने ऐसी अद्भुत घटना को देखकर सोचा, जहाँ पहुँच कर खरगोश शिकारी कुत्तों का मुकाबला करने के लिए खड़ा हो सकता है, वहाँ की मिट्टी में यदि मनुष्य रहे तो निश्चय ही उसमें असाधारण शक्ति और साहस होगा। इसी कारण इस स्थान पर उन्होंने किले का निर्माण करवाया और राजधानी स्थापित की। यद्यपि कुछ लेखक इस कथा को सर्वथा निर्मूल मानते हैं।

23, अमर सिंह (सन् 1624–1640) – अमर सिंह का जन्म सन् 1583 में हुआ था। महाराज विक्रमादित्य के पश्चात् उनके पुत्र अमर सिंह सन् 1624 में राजगद्दी पर बैठे। दिल्ली के बादशाह जहाँगीर से इनके अच्छे संबंध थे। सन् 1626 में महाराज अमर सिंह ने मुगल सेना का साथ देते हुए ओरछा के बागी राजा जुझारू सिंह बुन्देला के साथ युद्ध किया था। सन् 1633 के आसपास महाराज अमर सिंह ने अमरपाटन की गढ़ी का निर्माण कराया था तथा एक तालाब खुदवाया था। इस स्थान का नाम अमरपाटन इसी समय पड़ा।

महाराज अमर सिंह साहित्य प्रेमी थे। इनके दरबार में रहकर कवि नीलकण्ठ ने ''अमररेश विलास'' नामक ग्रन्थ की रचना की थी। घनश्यामदास के पुत्र भूपति राय इनके दरबारी कवि थे। रीवा नरेश अमर सिंह का स्वर्गवास सन् 1640 में हुआ।

24, अनूप सिंह (सन् 1640–1660) – अनूप सिंह का जन्म सन् 1625 में हुआ था। महाराज अमर सिंह के स्वर्गवास के समय युवराज अनूप सिंह की उम्र 16 वर्ष की थी। किशोरावस्था में ही इनके ऊपर राज्य सत्ता का भार आ गया। राज्य की इस स्थिति को देखकर सन् 1650 में ओरछा के राजा जुझारू सिंह के भाई पहार सिंह बुन्देला ने रीवा पर आक्रमण कर दिया। उस समय महाराज अनूप सिंह बान्धवगढ़ की ओर चले गये थे। पहार सिंह के आक्रमण का मुकाबला कसौटा के वीर जगत राय तथा लाल फतेह सिंह के नेतृत्व में रीवा की फौज ने किया। रीवा की फौज विजयी हुई। कुछ दिनों बाद महाराज अनूप सिंह रीवा आये। इसी समय लाल फतेह सिंह ने सोहावल की रियासत कायम की।[4] दिल्ली के सम्राट शाहजहाँ से महाराज अनूप सिंह ने सन् 1655–56 में भेंट की थी। दिल्ली सम्राट ने इनका सम्मान करते हुए इन्हें ''सेह–हुजूरी'' की उपाधि से नवाजा था। अनूप सिंह ने रीवा राज्य के दक्षिणी क्षेत्र में अपने नाम से अनूपपुर कस्बा (वर्तमान समय में जिला) आबाद किया था।

25, भाव सिंह (सन् 1660–1690) – महाराज भाव सिंह की शिक्षा प्राच्य संस्कृत में हुई थी। महाराज भाव सिंह संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान थे। आपका रूझान आध्यात्म और धार्मिकता की तरफ ज्यादा था। इन्होंने ''बघेलवंशवर्णनम्'' के रचयिता कवि रूपणि शर्मा को राज्याश्रय प्रदान किया था। बालकृष्ण सूरि, किशोर, गोवर्धन बाजपेयी, लालमणि, औपगवि, कमलनयन आदि विद्वान इनके सभासद थे। दिल्ली सम्राट औरंगजेब से इनकी मित्रता थी। महाराज भाव सिंह ने स्वयं ''हौत्र कल्पद्रुम'' नामक साहित्यिक ग्रन्थ की रचना की थी। महाराज भाव सिंह भगवान जगन्नाथ जी के अनन्य भक्त थे। उन्होंने तीन बार जगन्नाथ स्वामी की यात्रा की और वहाँ से जगन्नाथ जी के विग्रह (मूर्तियाँ) लाकर मुकुन्दपुर, कोटर और रीवा (वर्तमान संस्कृत कालेज परिसर) में स्थापित करवाई थी। इनके शासन काल में महामृत्युंजय मन्दिर का निर्माण कराया गया था। रीवा किले में भी अनेक भवनों जैसे– लम्बा घर और मोती महल का निर्माण महाराज भाव सिंह के द्वारा कराया गया था। महाराज भाव सिंह की 19 महारानियाँ थीं, जिनमें प्रमुख चित्तौड़ नरेश महाराज राजसिंह की पुत्री अजबकुँवरि थीं। महाराज भाव सिंह के समान महारानी अजबकुँवरि भी धार्मिक स्वभाव की थी। इन्होंने रीवा नगर के मध्य एक विशाल तालाब खुदवाया था; जिसका नाम रानी तालाब है। इन्होंने तालाब के पश्चिमी मेढ़ पर माँ शारदा का मन्दिर तथा तालाब के मध्य में शिव मन्दिर का निर्माण कराया था। इन्हीं के नाम पर ''नृपरनियाँ'' (निपनिया) मोहल्ला आज भी रीवा में है। महाराज भाव सिंह के कोई सन्तान नहीं थी।

26, अनिरूद्ध सिंह (सन् 1690–1700) – महाराज भाव सिंह ने अपने छोटे भाई यशवन्त सिंह के पुत्र अनिरूद्ध सिंह को बान्धव गद्‌दी पर बैठाया। अनिरूद्ध सिंह बचपन से ही महाराज भाव सिंह के पास रहते थे। अनिरूद्ध सिंह के शासन काल में मऊ के सेंगर अपने आपको रीवा राज्य से स्वतंत्र मानने लगे थे। महाराज भाव सिंह की मृत्यु का समाचार पाकर मऊ के सेंगर रीवा की तरफ बढ़ने लगे। महाराज अनिरूद्ध सिंह इन्हें रोकने के लिए अपनी सेना के साथ बढ़े। महाराज अनिरूद्ध का पड़ाव मनगवाँ के पास पड़ा। भनवार के सेंगर ठाकुरों ने महाराज अनिरूद्ध सिंह से मध्यस्थता कर संधि की बात कही। महाराज अनिरूद्ध सिंह ने तत्कालीन परिस्थितियों का आँकलन करते हुए उनकी बात को स्वीकार कर लिया। महाराज अनिरूद्ध सिंह एक वीर पुरुष थे। वे अपनी सेना को मनगवाँ के शिविर में छोड़कर अपने एक सहायक मनगइयाँ बारी के साथ मऊ के सेंगरों से मिलने चल दिये। किन्तु वहाँ पहुँच कर उन्हें मालूम चला कि उनके साथ विश्वासघात किया गया है। जैसे ही वह लौटने लगे पीछे से मऊ के सेंगरों द्वारा गोली चलाई गई। वह गोली महाराज अनिरूद्ध सिंह के लगी। महाराज अनिरूद्ध सिंह के साथ उनका प्रिय सहायक मनगइयाँ बारी भी शहीद हो गया। जैसे ही यह समाचार मनगवाँ, महाराज के शिविर में पहुँचा, रीवा की सेना के वीर जवान मऊ के सेंगरों के ऊपर टूट पड़े। रीवा की सेना ने सेंगरों को पराजित किया और रघुनाथ सिंह सेंगर को गिरफ्तार कर राजमाता के समक्ष पेश किया गया। सेंगरों के राज्य का तिहाई भाग छोड़कर बाकी भाग रीवा राज्य में मिला लिया गया।

27, अवधूत सिंह (सन् 1700–1755) – जिस समय महाराज अनिरूद्ध सिंह का निधन हुआ, उस समय अवधूत सिंह की उम्र 6 माह की थी। राज्य में कानून और व्यवस्था तथा सुरक्षा का भार राज्य के मंत्री हृद्‌यराम सुरकी को सौंपकर राजमाता अपने पुत्र अवधूत सिंह को लेकर अपने मायके प्रतापगढ़ चली गई। मंत्री हृद्‌यराम चित्रकूट के राजा थे। उक्त स्थिति की जानकारी जब पन्ना के बुन्देला राजा हृद्‌यशाह को हुई, तो उसने रीवा राज्य पर आक्रमण का निर्णय लिया। हृद्‌यशाह की सेना ने रीवा पहुँच कर घोघर के किनारे अपना डेरा डाला। रीवा की ओर से जब कोई प्रतिरोध नहीं हुआ तब हृद्‌यशाह की सेना ने शहर में प्रवेश किया और किले की बाहरी प्राचीर (कोट) के नीचे डेरा डाला। कुछ इतिहासकारों का मत है कि, जहाँ इस समय रीवा नगर की कोतवाली (पुलिस थाना) है, वहाँ हृद्‌यशाह बुन्देला ने एक दरवाजा बनवाना प्रारंभ किया और कोट के भीतर से उसके सैनिक रीवा किला के अन्दर पहुँच गये। इस स्थिति की सूचना राजमाता को प्रतापगढ़ भेजी गई तब राजमाता ने अपने एक सेवक बख्शी हनुमान प्रसाद को पत्र लेकर दिल्ली सम्राट बहादुरशाह के पास भेजा। बहादुरशाह को अपने पूर्वज हुमायूँ और रीवा राज्य के सम्बन्धों के बारे में पूर्ण जानकारी थी। अतः राजमाता का पत्र आते ही उन्होंने सेनापति मीरबख्श के नेतृत्व में शाही फौज रीवा राज्य की सहायता के लिए रवाना की। जब हृद्‌यशाह को शाही फौज की रवानगी की सूचना मिली तो वह रीवा किले में 1000 फौज छोड़कर प्रस्थान कर गया।

28, अजीत सिंह (सन् 1755–1809) – महाराज अवधूत सिंह के पुत्र अजीत सिंह सन् 1755 में रीवा राज्य की गद्‌दी पर बैठे। अजीत सिंह संस्कृत एवं फारसी भाषा के विद्वान थे। जिस समय महाराज अजीत सिंह गद्‌दी पर बैठे उस समय उत्तरी भारत में मुस्लिम राजसत्ता अवसान की तरफ थी और ईस्ट इंडिया कम्पनी का प्रभुत्व बढ़ता जा रहा था। सन् 1758 में दिल्ली का बादशाह शाह आलम (अली गौहर) ने पटना पर आक्रमण किया किन्तु जब उसने लार्ड क्लाइव (तत्कालीन गवर्नर जनरल) को सेना के साथ अपनी ओर आते हुए सुना, तब वह पटना की तरफ से हटकर रीवा राज्य में आ गया। महाराज अजीत सिंह ने शाह आलम को प्रश्रय दिया और मुकुन्दपुर की गढ़ी में बहुत आदर और सम्मान के साथ रखा। शाह आलम के साथ उनकी बेगम लाल बाई भी थीं, जो

गर्भवती थीं। मुकुन्दपुर में ही 24 अक्टूबर सन् 1775 को अकबर द्वितीय का जन्म हुआ, जो आगे चलकर सन् 1806 में भारत का बादशाह बना। बादशाह शाह आलम अपनी बेगम को महाराज रीवा के संरक्षण में छोड़कर बक्सर की तरफ चला गया था। सन् 1762 में जब शाह आलम बक्सर से प्रयाग आया, तब महाराज रीवा ने उनकी बेगम तथा पुत्र को ससम्मान उनके पास भिजवा दिया था।

29, जय सिंह (सन् 1809–1933) –जय सिंह का जन्म 4 जनवरी 1765 ई. में हुआ था। उनका राज्याभिषेक 1809 ई. में हुआ। महाराजा जय सिंह का शासन काल रीवा राज्य के इतिहास में एक विभाजक रेखा मानी जाती है। हम देखते है कि रीवा के बघेल राजाओं को अंग्रेजों से विधिवत् सम्बन्ध इन्हीं जय सिंह के समय से शुरू होता है। इसके साथ ही युवराज बाबू विश्वनाथ सिंह के शासन में सहयोग से रीवा के बघेल राज्य को एक नव दिशा मिलती है।

30, विश्वनाथ सिंह (सन् 1833–1854) – युवराज विश्वनाथ सिंह अपने पिताश्री महाराज जय सिंह के शासनकाल में ही राज्य के कार्यों में हाथ बँाटने लगे थे। रीवा किला में ही विश्वनाथ सिंह की शिक्षा–दीक्षा उच्च कोटि के विद्वानों द्वारा सम्पूर्ण करायी गयी थी। इनकी शिक्षा हिन्दी, फारसी और संस्कृत भाषा में हुई थी। महाराज जय सिंह ने अपने जीवन काल में ही सन् 1833 में विश्वनाथ सिंह का राज्याभिषेक कर दिया था। महाराज विश्वनाथ सिंह राज्याधिकार प्राप्त करने के पश्चात् सबसे पहले शासन व्यवस्था को व्यवस्थित करने में जुट गये। अनेक इलाकेदारों को राजाज्ञा का पालन करने के लिए बाध्य किया। मऊ के इलाकेदार अनिरूद्ध सिंह ने तो इनसे लड़ाई की भी तैयारी कर ली थी। इसकी जानकारी होने पर महाराज विश्वनाथ सिंह ने सन् 1835 में मऊ के इलाकेदार अनिरूद्ध सिंह पर चढ़ाई कर दी और मऊ की गढ़ी पर अधिकार कर लिया। अनिरूद्ध सिंह को वहाँ से हटाकर बिछरहटा का इलाकेदार बना दिया गया था। इस युद्ध में रीवा राज्य की सेना की प्रसिद्ध तोप ''हनूहंकार'' का भी प्रयोग किया गया था। सन् 1844 में महाराज विश्वनाथ सिंह द्वारा नईगढ़ी के इलाकेदार के ऊपर चढ़ाई की गयी थी। इस युद्ध में रीवा सेना विजयी हुई। इसके पूर्व महाराज विश्वनाथ सिंह द्वारा सेमरिया के मामले को भी फौजी कार्यवाही करके सन् 1821 में निपटाया गया था। सन् 1839 में मऊगंज और मिर्जापुर के सरहदी झगड़े को निपटाने के लिए ब्रिटिश सरकार की तरफ से कमिश्नर स्टुअर्ट बुलाये गये थे। इस तरह महाराज विश्वनाथ सिंह ने प्रशासनिक दक्षता का परिचय देते हुए रीवा राज्य को मजबूत किया था। महाराज विश्वनाथ सिंह के पिता महाराज जयसिंह के शासन काल से कार्यरत दीवान वंशीधर सन् 1849 में स्वर्गवासी हुए, तत्पश्चात् दशहरा के शुभ अवसर पर दीनबन्धु को दीवान बनाया गया। सन् 1843 में महाराज विश्वनाथ सिंह द्वारा परमिट तथा आबकारी विभाग की स्थापना की गई।

31, रघुराज सिंह (सन् 1854–1880) – महाराज विश्वनाथ सिंह के स्वर्गवास के पश्चात् महाराज रघुराज सिंह सन् 1854 में रीवा राजगद्दी पर बैठे। राज्याभिषेक के अवसर पर ब्रिटिश गवर्नर जनरल का एजेन्ट हेमेल्टन रीवा में उपस्थित था। महाराज रघुराज सिंह संस्कृत, फारसी और अंग्रेजी भाषा के विद्वान थे। खेलों में महाराज की विशेष रुचि थी। इन्होंने ''दशघरा शतरंज'' के खेल की उत्पत्ति की। महाराज की शिकार खेलने में भी विशेष निपुणता थी। महाराज रघुराज सिंह भी अपने पिताश्री के समान धार्मिक प्रवृत्ति के थे। इन्होंने भारत के कई तीर्थ स्थानों का भ्रमण किया। जगन्नाथ पुरी पहुँचकर इन्होंने ''जगदीश शतक'' की रचना की थी। महाराज रघुराज सिंह के शासनकाल में लक्ष्मणबाग स्थान को राजगुरु का आश्रम घोषित किया गया तथा स्वामी मुकुन्दाचार्य जी के निर्देशन में लक्ष्मण जी के मन्दिर की स्थापना की गयी। इनके शासन काल में गोविन्दगढ़ नगर बसाया गया और एक विशाल तालाब खुदवाया गया, जिसे 'विश्वनाथ सागर' का नाम दिया गया। सन् 1857 के स्वाधीनता आन्दोलन के समय रीवा के तत्कालीन महाराज रघुराज सिंह ने ब्रिटिश सरकार का साथ दिया। उन्होंने बघेलखण्ड में शान्ति बनाये रखने हेतु अपनी सेना के 2000 सैनिकों को ब्रिटिश सरकार को सौंपा। उनकी इन सेवाओं के बदले में ब्रिटिश सरकार ने उन्हें सोहागपुर और अमरकण्टक का क्षेत्र दिया तथा सन् 1864 में उन्हें के.जी.सी.एस.आई. की उपाधि प्रदान की। कहा जाता है कि, महाराज रघुराज सिंह ऊपरी तौर पर ब्रिटिश सरकार की मदद कर रहे थे परन्तु अंदर से वे इस आजादी के आन्दोलन के पोषक थे। इस आन्दोलन में इस क्षेत्र के कई लोगों ने अंग्रेजों से लोहा लिया था। उनमें ठाकुर रणमत सिंह तथा लाल श्यामशाह का नाम विशेष उल्लेखनीय है। सन् 1862 में, रीवा में ब्रिटिश सरकार की एक एजेन्सी स्थापित हुई जो कि शीघ्र ही महाराज रीवा की इच्छानुसार तोड़ दी गई। इसके पश्चात सन् 1870 में ब्रिटिश सरकार द्वारा इस क्षेत्र के लिए ''बघेलखण्ड पोलिटिकल एजेंसी'' की स्थापना की गई। अभी तक इस क्षेत्र में अंग्रेजों का केवल अप्रत्यक्ष नियंत्रण था, किन्तु महाराज रघुराज सिंह के समय में शासन का खर्च अधिक था और आमदनी कम थी। इसलिए सन् 1875 में महाराज ने राज्य के प्रबंध का भार ब्रिटिश सरकार को सौंप दिया। ब्रिटिश सरकार ने इस शर्त के साथ राज्य के प्रशासन का उत्तरदायित्व लेना स्वीकार किया कि उनके प्रशासन काल के दौरान शासन की जो प्रणाली स्थापित की जाय एवं जनता को जो अधिकार दिये जाँय उन्हें ब्रिटिश सरकार के प्रत्यक्ष नियंत्रण के हटने के बाद भी जारी रखा जाय। महाराज रघुराज सिंह का स्वर्गवास सन् 1880 में हुआ।

32, वेंकटरमण सिंह (सन् 1880–1918) – 1880 में महाराज रघुराज सिंह की मृत्यु के पश्चात् उनके पुत्र महाराज वेंकटरमण सिंह रीवा राज्य की गद्दी पर बैठे। किन्तु उस समय उनकी उम्र केवल 3 वर्ष की थी, इसलिए ब्रिटिश सरकार का नियंत्रण पहले जैसा बना रहा। ब्रिटिश सरकार की ओर से एक सुपरिटेण्डेन्ट राज्य का शासन चलाता था। उस समय इस राज्य के इलाकेदारों, पवाईदारों और जमींदारों को अपने–अपने क्षेत्र में दीवानी और फौजदारी के मामलों तथा रेवन्यू (माल), कस्टम (परमिट), चुंगी एवं जंगल से संबंधित विषयों में विशेष अधिकार प्राप्त थे। राज्य में ब्रिटिश सरकार का प्रत्यक्ष नियंत्रण स्थापित हो जाने से इस वर्ग के अधिकारों में कुछ प्रतिबंध लगने शुरू हुए। 1881 में सर्वे बन्दोबस्त कराया गया एवं लगान की ठेकेदारी प्रथा को समाप्त कर दिया गया। रेवन्यू मैनुअल का निर्माण किया गया तथा प्रशासन की सुविधा की दृष्टि से राज्य में 7 तहसीलें स्थापित की गई।

अब तक राज्य में केवल 7 तहसीलें थीं, जिनकी संख्या बढ़ाकर 10 की गई। सन् 1908 में किला का विस्तार किया गया तथा 20 लाख रुपये की लागत से ''वेंकट भवन'' का निर्माण कराया गया। सन् 1910 में बम्बई के लक्ष्मी रोड पर एक विशाल कोठी खरीदी गई। प्रयाग की कोठी का भी विस्तार किया गया। रीवा नगर में गोला घर, राजनिवास, कचहरी, पीली कोठी आदि का निर्माण कराया गया। लेफ्टि. कर्नल सर वेंकटरमण सिंह एक स्पष्ट वक्ता, दृढ़ प्रतिज्ञ और यशस्वी नरेश थे। महाराज की सेना में बहुत अधिक रुचि थी। 27 जुलाई 1904 को उन्होंने स्वयं रीवा स्टेट आर्मी के

कमाण्डर इन चीफ का पद ग्रहण किया था। इन्होंने रीवा के अलावा सतना, बघऊँ और बान्धवगढ़ में फौजी छावनियाँ स्थापित की थीं। रिसाला, पलटन और तोपखाना को आधुनिक बनाया। फौजियों के प्रशिक्षण की अद्यतन व्यवस्था की गयी थी। इस समय मध्य भारत में सबसे विशाल सेना रीवा राज्य के पास थी। कला के विकास के लिए इन्होंने रीवा में ''बघेलखण्ड नाटक कम्पनी'' की स्थापना की थी। महाराज वेंकटरमण सिंह ने ''भजनावली'' नाम की एक पुस्तक की रचना भी की थी। सन् 1918 में महाराज वेंकटरमण सिंह का स्वर्गवास हो गया।

33, गुलाब सिंह (सन् 1918–1946) – ब्रिटिश कालीन भारत की सेन्ट्रल इण्डिया एजेन्सी की मुख्य रियासत रीवा के 33वें नरेश महाराज गुलाब सिंह एक कुशल प्रशासक के साथ–साथ समाज सुधारक व स्वदेशी भावना की अलख जगाने वाले भारत के प्रथम शासक थे, जिन्होंने ब्रिटिश शासन काल में सर्वप्रथम अपने राज्य में उत्तरदायी सरकार की घोषणा की थी। उनका जन्म फाल्गुन शुक्ल 15 विक्रमी संवत् 1960 (13 मार्च, 1903) को हुआ था। उनके पिता प्रख्यात चालुक्य क्षत्रिय की बघेल शाखा के राजपूत परम प्रतापी महाराज वेंकटरमण सिंह और माता महारानी श्री शिवराज कुमारी देवी डुमराँव के महाराज राधिका प्रसाद सिंह परमार की पुत्री थीं, जो रीवा में उज्जैनिन महारानी के नाम से प्रख्यात थीं। महाराज गुलाब सिंह की किशोरावस्था में ही उनकी माताश्री का स्वर्गवास 23 नवम्बर 1917 को और उनके पिताश्री का स्वर्गवास 30 अक्टूबर 1918 को हो गया था। माता–पिता के निधन के असीम दुख ने उनमें अटूट धैर्य व साहस के साथ कष्ट को, बिना विचलित हुए, सहने की क्षमता प्रदान की।

महाराज गुलाब सिंह ने अपने शासन के अंतिम 4 वर्ष ब्रिटिश सरकार से जूझते हुए 30 जनवरी 1946 तक सेन्ट्रल इण्डिया एजेन्सी की सबसे बड़ी रियासत रीवा के शासक रहे। 31 जनवरी 1946 को उनके पुत्र युवराज मार्तण्ड सिंह रीवा की राजगद्दी पर बैठे। उनका विधिवत् राज्याभिषेक 6 फरवरी, 1946 को हुआ। महाराज गुलाब सिंह इसके पश्चात् रीवा की उन गलियों को छोड़कर, जहाँ की दीवालें उनके नारों ''पढ़िये–पढ़ाइये'', ''रिमहाई गजी (देशी खद्दर) घर–घर में सजी'' से भरी हुई थी, बम्बई चले गये। अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में उन्होंने हमेशा रीवा के बुने हुए सूत का वस्त्र पहना। साफा, परदनी और छकलिया उनकी पोषाक थी। इस तरह रीवा, रिमहों को देकर महाराज गुलाब सिंह 13 अप्रैल 1950 को इस संसार सागर से महाप्रयाण कर गये। महाराज गुलाब सिंह ने महात्मा गांधी के कार्यक्रमों को अपने राज्य में लागू किया और अंग्रेजों के कोपभाजन हुए। ब्रिटिश सरकार ने उनके ऊपर मुकदमा चलाया और 1942 से 1946 के बीच उन्हें अपमानित करने की चेष्टा की। यह महाराज गुलाब सिंह का आत्मबल व सत्याग्रह की भावना थी कि उनके ऊपर ब्रिटिश सरकार कोई आरोप सिद्ध न कर पाई।

34, मार्तण्ड सिंह (सन् 1946–1948) – महाराज मार्तण्ड सिंह का जन्म गोविन्दगढ़ किला के दरिया महल में 15 मार्च 1923 को हुआ था। जब यह समाचार रिमही जनता को प्राप्त हुआ कि बान्धवीय नरेश महाराज गुलाब सिंह को पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई है, तो प्रसन्न होकर प्रजा सड़कों पर उमड़ पड़ी। समूचे रीवा नगर को दुल्हन की तरह सजाया गया। नामकरण के समय यहाँ के कवियों ने कहा कि, ''विन्ध्य क्षेत्र पावन परम्, श्रुति कह रेवा खण्ड। व्याघ्रदेव के वंश में उदित महा मार्तण्ड।।'' इस तरह युवराज का नामकरण हुआ और मार्तण्ड सिंह नाम रखा गया। शिशु मार्तण्ड का व्यक्तित्व वास्तव में सूर्य के समान था। उनके मुख को देखने से यह प्रतीत होता था कि जैसे लालिमायुक्त सूर्य का उदय हुआ है। युवराज मार्तण्ड सिंह को गोविन्दगढ़ से रीवा लाया गया और व्यंकट भवन में उनका लालन–पालन प्रारंभ हुआ। 19 अक्टूबर 1923 को युवराज मार्तण्ड सिंह का पसनी संस्कार वेंकट भवन में धूमधाम के साथ सम्पन्न हुआ। बाल्काल से युवराज मार्तण्ड सिंह का उच्चारण अत्यन्त साफ व शुद्ध था। बाल्यकाल से ही वे समय के पाबंद थे। कुछ दिनों बाद मार्तण्ड सिंह अपनी माताश्री के साथ शिमला चले गये। 2 नवम्बर 1927 को जब महाराज गुलाब सिंह अपनी पहली यूरोप यात्रा पर गये, तो साथ में युवराज मार्तण्ड सिंह को भी ले गये थे। युवराज मार्तण्ड सिंह अपने पिता के साथ लगभग दो वर्ष बाल्यकाल में यूरोप के विभिन्न देशों की यात्रा की। अपने पिता महाराज गुलाब सिंह के साथ यूरोप से वह 9 फरवरी 1929 को वापस रीवा आये। 24 मार्च 1929 को युवराज मार्तण्ड सिंह का मुण्डन संस्कार सम्पन्न हुआ। 12 अगस्त 1931 को जब महाराज गुलाब सिंह गोलमेज सम्मेलन में भाग लेने हेतु यूरोप गये, तब युवराज भी उनके साथ गये तथा उन्हीं के साथ 19 अक्टूबर 1931 को वापस रीवा आये। इसी वर्ष 22 दिसंबर 1931 को उनका कर्णवेधन संस्कार सम्पन्न हुआ। महाराज गुलाब सिंह ने युवराज मार्तण्ड सिंह के लिए सन् 1925–26 में ''युवराज भवन'' (वर्तमान समय में सैनिक स्कूल) का निर्माण कराया था। युवराज भवन और उसके आसपास की भूमि का रकबा 275 एकड़ था।

युवराज मार्तण्ड सिंह की प्रारंभिक शिक्षा हेतु अनेक विषयों के विद्वानों को रखा गया था। प्रारंभिक शिक्षा के पश्चात् उन्होंने डेली कालेज इन्दौर तथा मेयो कालेज अजमेर में शिक्षा ग्रहण की। इसके पश्चात् देहरादून में आई.सी.एस. के प्रशिक्षण से प्रशासन का ज्ञान प्राप्त किया। इसके अलावा उन्होंने मैसूर और उटकमण्ड में प्रशासन की व्यावहारिक बातें भी सीखीं। युवराज मार्तण्ड प्रारंभ से ही मेधावी एवं कुशाग्र बुद्धि के थे। उन्होंने सभी धर्मों के महत्वपूर्ण ग्रन्थों का अध्ययन किया था। वे अनेक भाषाओं के ज्ञाता थे, किन्तु उन्हें सबसे ज्यादा आनन्द बघेली भाषा बोलने में आता था। वे रीवा के लोगों से ठेंठ बघेली में ही बाते किया करते थे।

कच्छ–भुज के नरेश मिरजा महाराज विजय राव सिंह अपनी पुत्री राजकुमारी प्रवीण कुमारी का विवाह रीवा नरेश महाराजा गुलाब सिंह के सुपुत्र युवराज मार्तण्ड सिंह के साथ करना चाहते थे। इस हेतु महाराज रीवा के पास अपना प्रस्ताव भेजा। सन् 1943 श्रीकृष्ण जन्माष्टमी के दिन युवराज मार्तण्ड सिंह का विवाह राजकुमारी प्रवीण कुमारी के साथ बम्बई में सम्पन्न हुआ। राजकुमारी प्रवीण कुमारी साहित्य, कला, संगीत आदि विषयों में पारंगत थी। वे अपने नाम ''प्रवीण'' यानी ''दक्ष'' के अनुसार सभी गुणों से युक्त थीं। विवाह पश्चात् युवराज मार्तण्ड सिंह रीवा आये। युवराज मार्तण्ड सिंह का गोविन्दगढ़ से विशेष लगाव था। इस अवधि में रीवा के महाराज गुलाब सिंह के संबंध ब्रिटिश सरकार के साथ अत्यन्त खराब होते जा रहे थे और अन्ततः 31 जनवरी 1946 को उन्हें ब्रिटिश सरकार द्वारा राज्याच्युत कर दिया गया और युवराज मार्तण्ड सिंह को रीवा राज्य का शासक बनाये जाने की घोषणा की गई। महाराज मार्तण्ड सिंह का राजतिलक बसन्त पंचमी 6 फरवरी 1946 को किला रीवा के राघव महल में हुआ। तदनन्तर 1–4–1946 को असिस्टेण्ट गवर्नर जनरल द्वारा उन्हें राज्याधिकार का खरीता प्राप्त हुआ। खरीता दरबार में ही महाराज मार्तण्ड सिंह ने यह घोषणा की कि शासन व्यवस्था में जनता का हाथ रहेगा और उनका निजी व्यय राजकीय बजट से अलग रखा जायेगा। साथ ही सर आल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर की अध्यक्षता में रीवा राज्य का संविधान बनाने हेतु एक समिति के निर्माण की घोषणा की

गई। परन्तु सर आल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर की सेवायें इस कार्य हेतु उपलब्ध न हो पाई। अतः 25 सितम्बर 1946 के आदेश द्वारा सर हरीसिंह गौड़ की अध्यक्षता में ''संविधान समिति'' का गठन किया गया।[5] सर्वश्री इन्द्र बहादुर सिंह, नर्मदा प्रसाद सिंह, पं0 शम्भूनाथ शुक्ल, कप्तान अवधेश प्रताप सिंह, कर्नल शमसुद्दीन, देवीशंकर खण्डेलवाल एवं अवधबिहारी लाल इस समिति के सदस्य तथा श्री आर. कौशलेन्द्र राव एवं श्री राघवेन्द्र प्रसाद क्रमशः सचिव एवं उपसचिव नियुक्त किये गये। इस समिति ने अपना कार्य 2 अक्टूबर 1946 को प्रारंभ कर प्रतिवेदन 26 मई 1947 को रीवा दरबार के समक्ष प्रस्तुत किया। गौड़ समिति के प्रतिवेदन पर विचार करने पर 7 अगस्त 1947 को महाराज रीवा ने रीवा राज्य के नये संविधान की घोषणा की। यह संविधान संसदात्मक शासन प्रणाली के सिद्धान्तों पर आधारित था। उसमें द्विसदनीय व्यवस्थापिका और महाराज को सलाह देने के लिए प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में एक मंत्रिमण्डल की व्यवस्था थी। संविधान में यह भी कहा गया था कि, प्रधानमंत्री को व्यवस्थापिका के बहुमत का समर्थन प्राप्त होना चाहिए। संविधान के कुछ अन्य प्रावधानों से स्पष्ट है कि उस समय राज्य में इलाकेदारों और पवाईदारों का बहुत प्रभाव था, क्योंकि संविधान में यह कहा गया था कि व्यवस्थापिका के उच्च सदन में 50 प्रतिशत स्थान इलाकेदारों और पवाईदारों के प्रतिनिधियों के लिए सुरक्षित रहेंगे। इस घोषणा के पश्चात् लाल यशवन्त सिंह के नेतृत्व में एक मंत्रिमण्डल का गठन किया गया। लाल इन्द्रबहादुर सिंह, पं0 शम्भूनाथ शुक्ल, लाल यादवेन्द्र सिंह एवं श्री कन्हैया लाल पंचोली मंत्री नियुक्त किये गये। जैसा कि ऊपर बताया गया है कि, संविधान में यह प्रावधान रखा गया था कि, प्रधानमंत्री वही व्यक्ति हो सकेगा जिसे धारा सभा का बहुमत प्राप्त हो, परन्तु इस मंत्रिमंडल का गठन राज्य में धारा सभा के गठन के पूर्व ही कर दिया गया। इसी बीच 15 अगस्त 1947 को भारत स्वाधीन हुआ और राज्य में धारा सभा के गठन की कार्रवाई स्थगित कर दी गई। कैबिनेट मिशन योजना के अन्तर्गत भारत की संविधान सभा में प्रत्येक देशी रियासत से दो प्रतिनिधि भेजे जाने थे।

इस प्रकार 4 अप्रैल 1948 को बघेलखण्ड और बुन्देलखण्ड की 35 रियासतों को मिलाकर एक नई इकाई ''विन्ध्य प्रदेश'' के निर्माण की विधिवत घोषणा की गई। रीवा के महाराज मार्तण्ड सिंह विन्ध्य प्रदेश के राज प्रमुख बनाये गये। कप्तान अवधेश प्रताप सिंह के नेतृत्व में मंत्रिमण्डल का गठन हुआ। राज्य पुनर्गठन आयोग की सिफारिश के अनुसार 1—11—1956 को विन्ध्य प्रदेश, भोपाल, महाकौशल एवं मध्य भारत क्षेत्र को मिलाकर वर्तमान मध्यप्रदेश का निर्माण हुआ।

महाराज मार्तण्ड सिंह द्वारा संसार को 'सफेद शेर' का उपहार प्रदान किया गया था। सन् 1951 में उन्होंने सफेद शेर मोहन को पकड़ा था। महाराज मार्तण्ड सिंह शिक्षा तथा खेल के लिए हमेशा समर्पित रहे हैं। अपने जीवन काल में वे अहंकार से मुक्त थे तथा उन्होंने न करना तो सीखा ही नहीं था। पंडित जवाहरलाल नेहरू से लेकर श्रीमती इंदिरा गांधी तक से उनके घनिष्ठ संबंध रहे हैं। महाराज मार्तण्ड सिंह का वन्य प्राणियों एवं पर्यावरण से विशेष लगाव था। उन्होंने बांधवगढ़ को एक राष्ट्रीय उद्यान बनाने हेतु सन् 1967—68 में भारत सरकार से माँग की थी, उन्होंने बाघ का शिकार बन्द किये जाने की भी अपील की थी। महाराज मार्तण्ड सिंह का स्वर्गवास 20 नवम्बर 1995 को हुआ था।[6]

निष्कर्ष

हरवंश राय तिवारी ने सन् 1880 में लिखा है कि, व्याघ्रदेव सन् 1233—34 में गुजरात से अपने कुछ साथियों के साथ पूर्व की ओर तीर्थ यात्रा के लिए चल पड़े थे। इन्होंने गहौरा पर कब्जा कर लिया और कालिंजर गढ़ के किले में रहकर वहाँ राज्य करने लगे। कुछ समय बीतने पर उनसे तिवारियों, से जो लोधियों के मंत्री थे, मित्रता हो गई। उन्होंने तिवारियों से कहा कि यदि ''डहार'' राज्य में आप हमारा अधिकार करा दें तो आपको आधा राज्य मैं बांट दूँगा। आप मेरे गुरु और कुल पूज्य हैं; अस्तु आप हमारी सहायता कीजिए। इस तरह व्याघ्रदेव और तिवारियों के बीच मंत्रणा हुई।

जौनपुर के शर्की सुल्तानों के साथ इनके पूर्ववत मित्रता के संबंध थे। जौनपुर के नवाब हुसेनशाह शर्की को महाराज भीर देव ने बान्धवगढ़ में दिल्ली सम्राट बहलोल खाँ लोदी के विरुद्ध शरण दी थी। हुसैनशाह शर्की जौनपुर का अधिकारी था। इस घटना से क्रुद्ध होकर दिल्ली सम्राट बहलोल खाँ लोदी का पुत्र सिकन्दर लोदी ने सन् 1494 में बान्धवगढ़ पर चढ़ाई करने का निर्णय लिया। सिकन्दर लोदी की सेना कान्तित क्षेत्र तक पहुँच गयी थी। सन् 1495 के ज्येष्ठ माह में महाराज भीर देव का स्वर्गवास हो गया और उनके पुत्र शालिवाहन देव गद्दी पर बैठे।

बघेल वंश के 22वें राजा महाराज विक्रमादित्य ने रीवा को अपनी राजधानी बनाया। नसीरूल—उमरा कृत फारसी के इतिहास से भी पुष्ट होता है कि सन् 1618 में बान्धव नरेशों की राजधानी बान्धवगढ़ से परिवर्तित होकर रीवा में स्थापित की गयी। उस समय ''रीवा'' एक ''संरक्षित'' ग्राम था। सन् 1618 में यहाँ राजधानी स्थापित होने पर इसने एक नगर का स्वरूप धारण किया। महाराज विक्रमादित्य दिल्ली सम्राट जहाँगीर के समकालीन थे।

15 नवम्बर 1895 को महाराज वेंकटरमण सिंह को पूर्णरूप से राज्याधिकार प्रदान कर दिया गया। उनके शासनकाल में राज्य में तीन बार (1896—97, 1899—1900, 1907—1908) भयानक अकाल पड़े। प्रथम विश्वयुद्ध के समय रीवा दरबार ने ब्रिटिश सरकार की सहायता की और उनकी सेवाओं के लिए ब्रिटिश सरकार ने उन्हें जी.सी.एस.आई. की उपाधि प्रदान की। उनके शासनकाल में 1903 में दूसरा सर्वे बन्दोबस्त हुआ। इस बन्दोबस्त के पश्चात् दिनांक 3 सितम्बर 1907 और 21 जनवरी 1913 को राज्य के इलाकों, पवाइयों एवं जमींदारियों के अन्तर्गत आने वाली भूमि के संबंध में रीवा दरबार के आदेश प्रसारित किये गये और उन पर कुछ अधिक प्रतिबन्ध लगाये गये। इन आदेशों के परिणामस्वरूप गैरमनकूला लावारिस जायदाद दरबार के कब्जे में आ गई तथा जमीनों के प्रत्येक दाखिल—खारिज का लेखा (सेवा लगाने की रिपोर्ट) रीवा दरबार के अकाउन्ट आफिस में देना अनिवार्य कर दिया गया।

रीवा भी देश की कुछ उन प्रमुख रियासतों में थी, जो कि संविधान सभा में शामिल हुई। यहाँ से संविधान सभा के लिए दो प्रतिनिधि भेजे गये। एक — राजा शिव बहादुर सिंह, महाराज रीवा द्वारा मनोनीत किये गये और दूसरे लाल यादवेन्द्र सिंह, एक निर्वाचक मण्डल द्वारा निर्वाचित हुए। स्वतंत्रता के बाद भारत की राष्ट्रीय सरकार ने जब देशी रियासतों के एकीकरण की प्रक्रिया प्रारंभ की, तो यह स्वाभाविक था कि, रीवा पर भी उसका प्रभाव पड़े। जैसा कि पहले बताया जा चुका है, ब्रिटिश काल की सेंट्रल इण्डिया एजेंसी की रियासतों में रीवा सबसे बड़ी रियासत थी। इस एजेंसी में अन्य कई छोटी—छोटी रियासतें थीं, जिनकी संख्या 34 थी। यह निश्चित था कि, स्वतंत्र भारत में ये 34 रियासतें अपना अलग अस्तित्व नहीं कायम रख सकती थीं, इसलिए उनका एकीकरण तो अनिवार्य था। किन्तु ये रियासतें मिलकर भी एक इकाई नहीं बना सकती थीं। इसलिए यह प्रस्ताव आया कि इस नई इकाई में, जिसका नाम ''विन्ध्य प्रदेश'' रखा जाना था, रीवा को भी शामिल किया जाय। आरंभ में इस प्रस्ताव का यहाँ के नेताओं द्वारा कुछ विरोध हुआ किन्तु बाद में यहाँ के महाराज और नेता सब इसके

लिए तैयार हो गये।

इस तरह बघेलखण्ड की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि अपने आंचल में यहाँ की समस्त ऐतिहासिक विशेषताओं को समेटे हुए है और अपने आप में अत्यन्त सदृढ़ है।

सन्दर्भ

1. रीवा स्टेट गजेटियर, भोपाल, पृष्ठ 10
2. अग्निहोत्री, गुरु रामप्यारे, रीवा राज्य का इतिहास, म.प्र. शासन, साहित्य परिषद्, भोपाल, वर्ष 1972, पृष्ठ 29
3. Sir Elliot, The History of India, Vol. IV, Page 463
4. हिन्दी विश्वकोष, रेवा का इतिहास
5. 'प्रकाश'' रीवा साप्ताहिक पत्र, असाधारण अंक, दिनांक 25.09. 1946
6. रीवा राज्य का इतिहास, डॉ. एस. अखिलेश, पृष्ठ 39–60